बिहार में प्रादेशिक कृषि नियोजन–एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ0 बीरेन्द्र कुमार यादव*

पृथ्वी पर मानव सभ्यता के साथ ही .षि का विकास हुआ है क्योंकि पृथ्वी पर अपना अस्तित्व बचाये रखने के लिए मनुष्य को ऊर्जा की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति बहुत हद तक .षि के द्वारा ही हो सकती थी। .षि मानव के उन प्राथमिक उत्पादक प्रयासों को कहते हैं, जिनके द्वारा व ह भूमि पर बसकर उसके उपयोग का प्रयास करता है तथा यथासम्भव वनस्पतियों एवं पशुओं के प्रा.तिक प्रजनन एवं वृद्धि की प्रक्रिया को तीव्र एवं विकसित बनाता है। इन सभी कार्यों का उद्देश्य मानव के लिए वांछित या आवश्यक वानस्पतिक एवं पशु उपज प्राप्त करना होता है। .षि के अन्तर्गत उन सभी पद्धतियों को सम्मिलित किया जाता है जिनका प्रयोग .षक, .षि के विभिन्न तत्वों के सम्यक तथा अनुकूलतम् उपयोग में करता है। अर्थात .षि एक कार्य है, जिसका उददेश्य प्र.ति–प्रदत्त उपादानों का उपयोग करके मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। .षि एक महत्वपूर्ण उद्यम है, जिसे मानव जीवन का अंग माना गया है जो एक निश्चित प्रक्रिया से गुजरता है। .षि एक प्रकार का आर्थिक रूपान्तरण है, जिसमें कुछ उपयोगी वस्तुएँ रूपान्तरण की प्रक्रियाओं द्वारा उत्पन्न की जाती है।

मानव ने सभ्यता के विकास के साथ भूमि पर .षि कार्य प्रारम्भ किया, जो उनकी संख्या के संदर्भ में खाद्यान्नों की आपूर्ति कर देते हैं। परन्तु जनसंख्या बढ़ने के साथ–साथ भूमि पर खाद्यान्न उत्पादन हेतु दबाव बढ़ने लगा, जिससे मानव–भूमि अनुपात बहुत कम हो गया। खाद्यान्न, चाय और कच्चे पदार्थों की तीव्र माँग के कारण भूमि के नियोजन हेतु आवश्यकता बढ़ी। भारत जैसे .षि प्रधान देश में जीवन निर्वाह का प्रमुख साधन .षि है। अतः भारत की अर्थव्यवस्था में .षि की महत्वपूर्ण भूमिका है। अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों एवं योजना निर्माताओं के विचारानुसार आर्थिक विकास .षि विकास पर निर्भर करता हैं। यह सर्वज्ञात तथ्य है कि भारत में सम्पूर्ण जनसंख्या के 66 प्रतिशत कार्मिक .षि क्षेत्रों में लगे होने पर भी खाद्य उत्पादन में जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप अनुपातिक वृद्धि नहीं हो पा रही है। प्रा.तिक संसाधनो की कमी, भू–पारिस्थितिकी का सीमित होना और सांस्.तिक रीतियों की जटिलताओं से .षि विकास बाधित होता रहा है। अतः इन सीमित संसाधनों के कारण उपयोग किफायती ढंग से करने, अवशिष्ट पदार्थ को कम करने एवं उनके विनाश को बचाने के लिए हमें प्रेरित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त पारिस्थितिकीय जटिलता (प्रा.तिक एवं सांस्.तिक) उनके विभिन्न अवयवों का अनियमित वितरण तथा पारिस्थितिकीय असन्तुलन को दूर करने हेतु विभिन्न स्तरों पर दूरदर्शितापूर्ण योजना की जरूरत है और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता है। बहुमूल्य भू–संसाधनों के प्रबंध की तीव्र आवश्यकता को अब अधिक महत्व मिल रहा है। इसलिए इस समय विकास योजना को स्वयं भू–संसाधन स्थितियों के प्रति उन्मुख होने की जरूरत है। इन सभी उद्देश्यों की आवश्यक शर्त .षि भूमि संसाधनों के उपयोग का सर्वेक्षण है। विशेष रूप से भूमि उपयोग सर्वेक्षण जो बदले में भूमि वर्गीकरण को आवश्यक बनाता है।

***पी–एच0 डी0 भूगोल विभाग बी0 एन0 एम0 यू0, मधेपुरा**

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् 1953 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अर्न्तगत 'एस. ई. एस. (राष्ट्रीय प्रचार सेवा) कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया तथा विकासखण्डों की स्थापना की गयी। जिसका मुख्य कार्य किसानों को विकास सुविधाओं से अवगत व क्रियान्वित कराना था। परन्तु किन्हीं कतिपय कारणों से यह योजना सफल नहीं हो सकी। इसलिए .षि कार्य को और अधिक उन्नत रूप देने के लिए .षि विकास कार्यक्रम के अर्न्तगत प्रारम्भ में कुछ चयनित जनपदों तत्पश्चात समग्र जनपदों में ' डी. आई. ए. पी. (जनपदीय गहन .षि कार्यक्रम) प्रारम्भ किया गया। इसके साथ ही साथ आई. ए. पी. (गहन .षि क्षेत्र कार्यक्रम) भी विभिन्न क्षेत्रों में लागू किया गया।

सन् 1969 में .षकों की तत्कालीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए। 'आल इण्डिया रूरल क्रेडिट रिफार्म कमेटी के सुझाव पर .षि मजदूर लघु व सीमान्त .षक ऐजेन्सियां गठित की गई जो भूमि सुधार, .षि विकास एवं रोजगार के लिए बैंको द्वारा ऋण तथा विद्युत, यातायात जैसे अनेक सुविधाएं प्रदान करने में सहायता करती थी। (अर्चना मौर्या–2010)

कृषि विकास एवं नियोजन की संकल्पना :–कृषि भूगोल में .षि के विकास एवं नियोजन की संकल्पना विषय वस्तु के व्यावहारिक पक्ष को प्रस्तुत करती है। प्रायः .षि विकास से तात्पर्य .षि उत्पादकता वृद्धि से लिया जाता रहा है। .षि उत्पादकता में यह वृद्धि वैज्ञानिक एवं तकनीकी विधियों के समावेश के फलस्वरूप सम्भव हुआ है। यहाँ पर .षि वृद्धि और .षि विकास में विभेद का ज्ञान आवश्यक है। यांत्रिक क्रांति के पूर्व ".षि विकास को "उत्पादकता में वृद्धि" का स्थानापन्न माना जाता रहा है। परन्तु आज उत्पादकता में होने वाली वृद्धि की अपेक्षा .षि विकास को अधिक विस्तृत अर्थों में प्रयोग करते है। विकास, वृद्धि का पर्याय नहीं अपितु इसमें उत्पादकता वृद्धि के साथ ही उत्पादों का समान सामाजिक वितरण तथा पारिस्थितिक

संतुलन बनाये रखने पर भी विचार किया जाता है। इस प्रकार .षि विकास का अभिप्राय उस उत्पादकता की वृद्धि से है, जिसका लाभ, समाज के सभी वर्गों को समान रूप में प्राप्त हो और पर्यावरण का स्वरूप भी वि.त न हों। .षि भू.श्य में विकास तभी सम्भव हो सकता है। जब .षि के स्वरूप को निर्धारित करने वाले सभी कारकों को योजनाबद्ध ढंग से प्रयोग किया जाय। अब तक केवल उत्पादकता वृद्धि पर ही जोर दिया जाता रहा है। वर्तमान में .षि उत्पादकता के साथ–साथ .षि विकास में सामाजिक कल्याण, पोषणीयता और पारिस्थितिक संतुलन सम्बन्धी तथ्यों को भी प्राथमिकता दी जा रही है, ताकि .षि विकास को संतुलित बनाया जा सकें। इसी के तहत .षि में व्याप्त असंतुलन को दूर करने हेतु प्रयास किये जा रहे हैं। भारत में इस असंतुलन को दूर करने के लिए विभिन्न योजनाओं में अनेक उपाय किये गये हैं, जिनमें सीमान्त तथा लघु .षक विकास योजना, सूखा निवारण, क्षेत्र विकास, सामुदायिक विकास, शुष्क .षि, गहन .षि विकास आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हाल में इन सभी योजनाओं को पंचायतों के अधीन कर दिया गया है।

इस प्रकार कृषि भूगोल के अध्ययन में सम्बद्ध .षि विकास एवं नियोजन की संकल्पना अधिक महत्वपूर्ण है। .षि विकास की अवधारणा लोगों के आर्थिक विकास तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका की तलाश करने वाले न्यून स्तरीय लोगों (लघु, सीमान्त .षक व भूमिहीन) तक विकास के कार्यों की समीपता एवं लाभ को पहुँचाना भी समावेशित है। .षि विकास से तात्पर्य केवल उत्पादकता में वृद्धि से नहीं हैं। यह .षि के सम्पूर्ण अगों के विकास से सम्बन्धित है। आर्थिक क्रिया होने के कारण .षि को विकसित करने हेतु भूमि, श्रम, पूँजी निवेश और संगठन की कुशल व्यवस्था होना आवश्यक है। पाचवाँ आयाम .षि के क्षेत्र में नये तकनीकी ज्ञान का विस्तार सेवाओं के माध्यम से .षकों के बीच प्रचार–प्रसार और उनका अपनाया जाना है।

कृषि भूगोल का अध्ययन केवल .षि प्रभावित क्षेत्रों में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में है क्योंकि यह विभिन्न मानवीय घटकों से अर्न्तसम्बन्धित है। अतः विश्व में .षि कार्य प्राचीन काल से ही होता आ रहा है, जिसका उल्लेख पौराणिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है। लेकिन 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इंग्लैण्ड के अर्थयांग एवं जर्मन के जे.एन. सीवेन्ज को .षि भूगोल के विधिवत अध्ययन का श्रेय प्राप्त हुआ। ये उस समय के स्थला.ति विशेषज्ञ थे। 19वीं शताब्दी में प्रादेशिक उपागम के अन्तर्गत .षि की जटिलताओं का क्षेत्रीय वर्णन किया गया। वान थ्यनेन (1826) द्वारा प्रस्तुत .षि अवस्थिति सिद्धान्त 19वीं सदी की महत्वपूर्ण उपलब्धि रही। क्रिजमोस्की (1911) की .षि भूगोल की वैधानिक स्थिति एवं एल. वैवेल (1933) की ".षि भूगोल की समस्याओं' 'नामक लेखों ने .षि भूगोल को वैधानिक

आधार प्रदान किया। इसके अतिरिक्त हिलमेन (1911). बर्नहार्ड (1915). बेकर (1921–26), जोहन्सन (1925–26), सी.एफ. जोन्स (1928), एस.एन. वाल्केन वर्ग (1931–36), जी. टेलर (1930), मैकार्टो (1954), बुचमेन (1959) व रीड्स (1964) ने अपने–अपने शोध प्रबन्ध के माध्यम से .षि भूगोल की अध्ययन विधि. विषय सामग्री एवं विश्लेषण को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। इसी प्रकार .षि और खेती की पद्धति पर विचार करने के लिए पारिस्थितिकीय तंत्र के रूप में .षि भूगोल के .ष्टिकोण का विकास हुआ।

परिणामात्मक (मात्रात्मक) क्रान्ति और कम्प्यूटर के प्रयोग ने भी .षि अनुसंधान के गुण और आकार को बढ़ाया। .षि जलवायु विज्ञान, पौध परिस्थितिकतंत्र, .षि अर्थव्यवस्था और ग्रामीण समाजशास्त्र, रिमोट सेन्सिग एवं जी. आई. एस. की आधुनिक तकनीक ने .षि पर्यवेक्षणों जैसे– फसल वर्गीकरण, फसल सम्मिलन संघ फसल उत्पादन अनुमान के लिए ठोस आकड़े प्रस्तुत किए हैं।

'नियोजन' शब्द आपके लिए नया नहीं है क्योंकि यह हमारे दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले शब्दों का एक अंग है। आपने इस शब्द का प्रयोग अपनों परीक्षा अथवा किसी पर्वतीय स्थल पर जाने के लिए की गई तैयारी के संदर्भ में किया होगा। इसमें सोच–विचार की प्रक्रिया, कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करना तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु गतिविधियों का क्रियान्वयन सम्मिलित है। यद्यपि यह एक शब्द व्यापक है. परंतु इस अध्याय में इसका प्रयोग आर्थिक विकास की प्रक्रिया के संदर्भ में किया गया है। अतः उस तोर और तुक्का विधि से भिन्न है जिससे सुधार और पुनर्निर्माण का कार्य किया जाता था। सामान्यतः नियोजन के दो उपगमन होते हैंः खंडीय ैमबजवतंस) नियोजन और प्रादेशिक नियोजन। खंडीय नियोजन का अर्थ है– अर्थव्यवस्था के विभिन्न सेक्टरों, जैसे– .षि, सिंचाई, विनिर्माण, ऊर्जा, निर्माण, परिवहन, संचार सामाजिक अवसंरचना और सेवाओं के विकास के लिए कार्यक्रम बनाना तथा उनको लागू करना।

किसी भी देश में सभी क्षेत्रों में एक समान आर्थिक विकास नहीं हुआ है। कुछ क्षेत्र बहुत अधिक विकसित है तो कुछ पिछड़े हुए हैं। विकास का यह असमान प्रतिरूप (Pattern) सुनिश्चित करता है कि नियोजक एक स्थानिक परिप्रेक्ष्य अपनाएँ तथा विकास में प्रादेशिक असंतुलन कम करने के लिए योजना बनाएँ। इस प्रकार के नियोजन को प्रादेशिक नियोजन कहा जाता है।

लक्ष्य क्षेत्र नियोजन–जो क्षेत्र आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं उन क्षेत्रों में नियोजन प्रक्रम को विशेष ध्यान देना चाहिए। जैसा कि आप जानते हैं कि एक क्षेत्र का आर्थिक विकास उसके संसाधनों पर आधारित होता है। लेकिन कभी–कभी संसाधनों से भरपूर क्षेत्र भी पिछड़े रह जाते हैं। आर्थिक विकास के लिए संसाधनों

के साथ–साथ तकनीक और निवेश की आवश्यकता होती है। लगभग डेढ़ दशक के नियोजन अनुभवों से, यह महसूस किया गया है कि आर्थिक विकास में क्षेत्रीय असंतुलन प्रबलित हो रहा था। क्षेत्रीय एवं सामाजिक विषमताओं की प्रबलता को काबू में रखने के क्रम में योजना आयोग ने 'लक्ष्य क्षेत्र' तथा 'लक्ष्य समूह' योजना उपागमों को प्रस्तुत किया है। लक्ष्य क्षेत्रों की ओर इंगित कार्यक्रमों के कुछ उदाहरणों में कमान नियंत्रित क्षेत्र विकास कार्यक्रम, सूखाग्रस्त क्षेत्र विकास कार्यक्रम पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम हैं। इसके साथ ही लघु .षक विकास संस्था (FDA), सीमांत किसान विकास संस्था (MFDA) आदि कुछ लक्ष्य समूह कार्यक्रम के उदाहरण हैं।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में पर्वतीय क्षेत्रों तथा उत्तर–पूर्वी राज्यों, जनजातीय एवं पिछड़े क्षेत्रों में अवसंरचना को विकसित करने के लिए विशिष्ट क्षेत्र योजना को तैयार किया गया।

प्रादेशिक एवं क्षेत्रीय स्तर पर विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक तथा पारिस्थितकीय जन्य विषमता विविध स्वरूपों में परिलक्षित होती है। समुन्नत अर्थतंत्र की अपेक्षा संसाधन विपन्न विकासशील अर्थतन्त्र में ध्रुवीकरण प्रक्रिया के अधिक शक्तिशाली होने के कारण यह विषमता अत्यधिक तीव्र हुई है। भूगोल में प्रादेशिक समन्वयन की संकल्पना के स्थापित होने के साथ ही प्रादेशिक भिन्नता से सम्बन्धित क्षेत्रीय आयाम वाली समस्याओं के समाधान की प्रवृत्ति बढ़ी है। अतः क्षेत्रीय संसाधनों के समुचित उपयोग के साथ उनके संतुलित एवं बहुआयामी विकास हेतु क्षेत्रीय नियोजन अत्यन्त आवश्यक समझा जाने लगा। भारत में स्वतंत्रता पश्चात पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देश के संसाधनों का उपयोग करके सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं को दूर करने के विविध प्रयास किये गये। फिर भी देश के विभिन्न भागों में प्रति व्यक्ति आय, नगरीय जनसंख्या, साक्षरता, .षि विकास, औद्योगिक विकास, बेरोजगारी, जीवनस्तर आदि पक्षों में अधिक असमानता पायी जाती है।

ऐसी स्थिति में विकास प्रक्रिया के साथ ही जन साधारण के जीवन स्तर में सुधार, क्षेत्रीय संसाधनों का समुचित उपयोग, पारिस्थितकीय संतुलन, सामाजिक सुविधाओं एवं सेवाओं के तर्कसंगत तथा विकास उत्प्रेरक वितरण आदि के अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करना आधारीय पक्ष बनता गया। इस हेतु नियोजित प्रादेशिक विकास को सूक्ष्म स्तर पर क्षेत्रीय आयाम के साथ जोड़ा गया।

"किसी क्षेत्र में प्रा.तिक संसाधनों के समुचित उपयोग के आधार पर वहां के मानव समाज की क्रमवद्ध कार्यात्मक एवं संतुलित स्थानिक नियोजन की प्रक्रिया को लघु स्तरीय नियोजन की संज्ञा दी जाती है।"

क्षेत्रीय स्तर पर स्थानीय संसाधनो पूंजी, श्रम एवं अन्य उत्पादन के कारकों का अनुकूलतम उपयोग एवं जन साधारण की सहभागिता सुनिश्चित कर क्षेत्रीय नियोजन की संकल्पना को साकार किया जा सकता है। भूगोल के क्षेत्र में सूक्ष्मस्तरीय प्रादेशिक विकास की संकल्पना अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है, क्योंकि भूगोल सभी सम्बन्धित विषयों से उपलब्ध सूचनाओं, आकड़ों तथा तत्थ का क्षेत्रीय इकाई से सन्दर्भ में अध्ययन कर के उनमें व्याप्त सौलिक अन्तप्रक्रियाओं का विश्लेषण करता है।

जनपद में कृषि विकास नियोजन हेतु निम्नलिखित उपाय करना चाहिए :–

(1) भूमि सुधार (Land Reform)
(2) अवनयित भूमि विकास (Degraded Land Development)
(3) भूमि संसाधन का स्थिरीकरण (Land Resource stabilisation)
(4) भूमि उपयोग नियोजन (Land use Planning)
(5) सिंचाई का विस्तार (Extension of Irrigation)
(6) नवीन प्रौद्योगिकी का प्रयोग (Use of New Technology)
(7) विद्युती करण (Electrification)
(8) परिवहन, संचार एवं विक्रय व्यवस्था (Provison of Transport, Communication and Marketing)
(9) क्रेडिट एवं वित्तीय संस्थायें (Credit and Financing Institution)
(10) भंडारण एवं भंडार गृह (torage and ware house)
(11) कृषि से सम्बंधित क्रियाओं की व्यवस्था (Allied Agricultural Activitiè)
(12) कृषि–औद्योगिकरण (Agro- Industrialisation)
(13) कृषि में निवेश बढ़ाना (incrase in investment in Agriculture)
(14) कृषि निर्यात प्रोत्साहन (Promotion of Agricultural Export)
(15) फसल जीवन बीमा (Crop Insurance)

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. एस० सी० भट्ट, 2002, : द डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ झारखण्ड, ज्ञान पब्लिसिंग हाऊस, दिल्ली।
2. J)k] ouoklh dY;k.k dsUæ] jk¡ph 2002] vad 4
3. Mukherjee, B. (1966), Community Development in India, Orient Longman, Calcutta, PP.-33-34.
4. Prakash Rao, VL.S.et al. (eds.) 1976, Readings in Planning and Development, Golden Jubilee Volume Indian Geographical Society, Dept. of Geography, Madras
5. Pal, M.N. (1961) : Quantitative Delimitations of Regions, Bombay Geographical magazine, Vol. 889
6. Sengupta. P. (1968) & Sadasyuk. G. : Principles and Techniques of Regional Planning- The Scan Geographer, Vol. 14.